तो स्थूल (है)। द्रव्य–गुण–पर्याय का स्वरूप गुरुदेवने समझाया। अब द्रव्य–गुण–पर्याय के विचार आते हैं। बाहरसे धर्म होता है, ऐसा मानते थे। सामायिक करे तो धर्म होता है, प्रतिक्रमण के पाठ बोले तो धर्म होता है, उपवास करे तो धर्म होता है, ऐसी सब मान्यता बाहरसे थी। कोई ज्यादा करे तो शुभभाव रखें तो धर्म होता है। लेकिन वह शुभभाव भी आत्मा का स्वभाव नहीं, पुण्यबन्ध का कारण है। गुरुदेवने वह बारंबार कहा इसलिये सब को बैठा।

मुमुक्षु :– एकदम अंदरसे घूंटन करवाया।

समाधान :– बार–बार घूंटन करवाया। नहीं तो संप्रदाय के आग्रह छूटने (आसान नहीं था)। वह तो गुरुदेव की वाणी ऐसी ज़ोरदार थी तो टूट गये।

मुमुक्षु :– गुरुदेव का परिवर्तन हुआ तो पूरे समाज का परिवर्तन हुआ।

समाधान :– समाज का परिवर्तन हुआ।

मुमुक्षु :– शुभ का वज़न रह जाता है इसलिये हटता नहीं।

समाधान :– शुभ में जीव शुभ की रुचि में अटक जाता है। शुभ बीच में आये बिना रहता नहीं। अशुभभावसे बचने के लिये शुभभाव बीच में आते हैं। जिनेन्द्रदेव की भक्ति, गुरु की भक्ति, शास्त्र स्वाध्याय, तत्त्वविचार सब आता है। शुभभाव बीच में आये बिना रहते नहीं। लेकिन उसकी रुचि (हो जाये), उससे धर्म होगा ऐसा माने तो उसे यथार्थ श्रद्धा नहीं है। उससे भी स्वयं भिन्न है। वह अपना स्वभाव नहीं है। ऐसी श्रद्धा रखकर शुभभाव में जुड़े कि यह मेरा स्वरूप नहीं है। लेकिन अभी अंदर आत्मा प्रगट हुआ नहीं हो और शुभ को छोड़ दे तो अशुभ में चला जाये। शुभ बीच में आये बिना रहता नहीं। शुभ अपना स्वभाव नहीं है। मुनिवरों को भी शुभभाव आते हैं। पंच महाव्रत के, देव–गुरु–शास्त्र के, भक्ति के (भाव) आते हैं।

मुमुक्षु :– मुनिवरोंने भगवान की भक्ति की है।

समाधान :– मुनिवरोंने भगवान के स्तोत्र रचे हैं।

मुमुक्षु :– भक्ति में भी तत्त्व रखा है।

समाधान :– तत्त्व है। तो गृहस्थाश्रम में तो आये। मुनिवरों को आये तो जहाँ सम्यग्दर्शन है वहाँ तो आता ही है।

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा–सी.डी.–३ B

प्रश्न :– .. भले विकल्परूप हो, निर्विकल्प दशा नहीं हुई हो, लेकिन पूरा एक अभेद आत्मा का ग्रहण कैसे करना?

समाधान :– अभेद आत्मा यानी मूल वस्तु का ग्रहण। द्रव्य पर दृष्टि। अस्तित्व ग्रहण।

उसमें जो प्रतिक्षण पलटता है वह साथ नहीं आता, एक अस्तित्व जो अनादि-अनन्त चैतन्य का एकरूप अस्तित्व रहता है वह अस्तित्व।

प्रश्न :- अज्ञानी को पहले तो भेदरूप ख्याल होता है कि विकार के पीछे ज्ञान है वह मैं हूँ। फिर अभेद का अस्तित्व ग्रहण करे।

समाधान :- मतलब कि गुण-गुणी का भेद ग्रहण नहीं करे कि यह ज्ञान है, यह ज्ञान सो मैं, यह ज्ञान है, यह गुणी है, ऐसा गुणभेद ग्रहण नहीं करता। लेकिन एक ज्ञायक को ग्रहण करे। ज्ञानस्वभाव लक्षणसे पहचाने कि यह जाननेवाला है सो मैं हूँ। जाननेवाला गुण मात्र ग्रहण नहीं करके पूरा गुणी ग्रहण करता कि जो मात्र जानने का अस्तित्व रखता है, जो स्वयं ज्ञायक है और जो स्वयं जानने का अस्तित्व धारण करनेवाली जो वस्तु है वह मैं हूँ। इसे जाना, इसे जाना ऐसे जाना, पर को जाना वह मैं ऐसे नहीं, लेकिन जो स्वयं जाननस्वरूप ही है ऐसा जो अस्तित्व अनादि-अनन्त है, कि जो जाननेवाला है वही अनादि-अनन्त है। इसप्रकार जाननेवाले का अस्तित्व ग्रहण करना वह अभेद अस्तित्व। गुण-गुणी का भेद नहीं करके जो स्वयं ज्ञायक है, उस ज्ञायक को ग्रहण करना। पहले वह आत्मा को पहचानता नहीं इसलिये यह जाना, यह जाना ऐसे बाहरसे देखता है कि इसे जाना, वह जाननेवाला कौन है? जाननेवाला अंदर है। ऐसा करने के बजाय जाननेवाला स्वयं जाननेवाला है। इसे जाना, इसे जाना ऐसे नहीं करके स्वयं जाननेवाले का अस्तित्व है वही मैं हूँ। इसप्रकार अस्तित्व को ग्रहण करना। जाननेवाले का अस्तित्व-द्रव्य है वही मैं हूँ।

मुमुक्षु :- ज्ञानी तो हुआ नहीं है।

समाधान :- ज्ञानी हुआ नहीं, लेकिन उसे आत्मा को ग्रहण तो करना है, जिज्ञासा है, रुचि है। ज्ञानी भले हुआ नहीं लेकिन उसके मार्गपर उसे जाना है। इसलिये अस्तित्व का ग्रहण होता है, उस ओर वह मुड़ता है कि जो जाननेवाला है वह मैं हूँ। उस ओर ग्रहण करने का प्रयत्न करता है कि जो जाननेवाले का अस्तित्व है वह मैं हूँ। अस्तित्व को ग्रहण करे, अन्यसे भिन्न पड़े, उसका अधिक-अधिक प्रयत्न करता जाता है।

मुमुक्षु :- अस्तित्व का भावभासन होता है या कुछ वेदन में आता है?

समाधान :- वेदन में नहीं, उसका भाव-उसका लक्षण पहचानने में आता है-उसका भावभासन होता है। जैसे यह जाननेवाला है,.. जड़ कुछ जानता नहीं, ऐसे जो जाननेवाला है वह मैं हूँ, ऐसे उसके भाव का उसे भासन होता है। उसका वेदन होता है ऐसे नहीं। लेकिन अभी वह सहजरूपसे नहीं है, उसप्रकार का प्रयत्न करता है। सहजरूप दशा तो वह ज्ञायक को पहचाने तब होती है, यह तो प्रयत्नरूप होता है। लेकिन प्रयत्न किये बिना कुछ होता नहीं। प्रयत्न करे तो सहज होता है, ऐसे ही सहजता आती नहीं। किसीको अंतर्मुहूर्त में हो वह अलग बात है, बाकी प्रयत्न करे तो आगे बढ़ता है। जो सहज स्वरूप है वह मैं हूँ, ऐसे उसे ज्ञान में लेता है, लेकिन उस रूप ग्रहण करने के लिये वह प्रयत्न करता है।

मुमुक्षु :– भावभासन में जो ग्रहण किया है वह सत्य ग्रहण किया है, उसका विश्वास आ जाता है?

समाधान :– उसे विश्वास आ जाता है। उस ओर का प्रयत्न करे कि यह जाननेवाला है इसके सिवा मैं कोई नहीं हूँ, जो जाननेवाला है वही मैं हूँ। राग का स्वरूप या अन्य कोई स्वरूप या जड़ का स्वरूप या राग का स्वरूप मेरा नहीं है। जो आकूलतारूप है वह मेरा स्वरूप नहीं है, जो दुःखरूप है, स्वयं को अपना स्वरूप दुःखरूप लगे नहीं, इसलिये यह मेरा स्वरूप नहीं है। जो दुःखरूप लगता रहता है, जो आकूलतारूप लगता रहता है, वह स्वरूप मेरा हो ही नहीं सकता। जिसे जो चाहता नहीं, जो आकूलतारूप है वह मेरा स्वरूप हो ही नहीं सकता। स्वयं का स्वरूप स्वयं को दुःखरूप नहीं होता। इसलिये जो जाननेवाला ज्ञायक स्वरूप है वह मुझे दुःखरूप नहीं लगता। वह जो सहज जाननेवाला है वही मैं हूँ। वही मेरा स्वरूप है। जाननेवाला कोई दूसरा नहीं है, मैं ही हूँ, इसप्रकार ग्रहण कर सकता है। और ऐसा निश्चय उसे आ सकता है कि जो जाननेवाला है वह मैं हूँ और इस जाननहार में ही सब भरा है। जाननेवाले का स्वरूप है वही मुझे सुखरूप है, दूसरा कुछ सुखरूप नहीं है।

मुमुक्षु :– भावभासन में जो ज्ञायक आया उसमें कोई फ़र्क़ नहीं है उसका विश्वास आ जाता है?

समधान :– यह ज्ञायक का स्वरूप है वही मेरा स्वरूप है। उसमें कोई फ़र्क़ नहीं है। ऐसा निर्णय उसे होता है। भले सहजरूप सहज दशा नहीं है, लेकिन विकल्पसे भी उसे ऐसा निर्णय हो सकता है कि यही सत्य है, असत्य नहीं है।

मुमुक्षु :– ज्ञानी को जैसे सविकल्प दशा में ज्ञायक नज़राता रहता है, वैसे अज्ञानी को ऐसी दशा में नज़राता है?

समाधान :– ज्ञायक जो ज्ञानी को नज़राता है वैसा उसे नज़राता नहीं। ज्ञानी को तो सहज दशारूप नज़राता है। उसे कुछ विचार नहीं करना पड़ता या उसे विचार करके निर्णय नहीं करना पड़ता। उसे सहजरूपसे जो ज्ञायक है उस ज्ञायक की धारा ही चलती है। कर्ताबुद्धि छूटकर ज्ञायक की ज्ञायकधारा उसे सहजरूपसे निरंतर प्रतिक्षण निर्विचाररूपसे सहज परिणति चलती है। इसलिये ज्ञानी की दशा अलग है। इसे अनादि की एकत्वबुद्धि अज्ञानदशा में कुछ विचार किये बिना चल रही है। ज्ञानी को ज्ञान की दशा सहजरूपसे चलती है। जो निर्णय करता है उसे ऐसी सहज नहीं है। उसने सत्य निर्णय किया है, लेकिन ज्ञायक की ज्ञानधारा नहीं चलती। उसे बार–बार विचार करना पड़ता है। विचारकर याद करना पड़ता है, एकत्वबुद्धि हो रही है। विचारकर निर्णय किया कि मैं ज्ञायक हूँ, लेकिन ऐसी सहज परिणति नहीं है। परिणति एकत्वरूप हो रही है। उसने निर्णय किया कि ज्ञान सो मैं, ज्ञायक सो मैं, यह ज्ञायक है वह मैं, लेकिन परिणति में उसके कार्य, अंदर परिणति में एकत्वबुद्धि हो रही है। इसलिये

बार-बार विचार करना पड़ता है। ज्ञानी जैसी सहज दशा उसकी नहीं है। निर्णय करे कि यह रहा ज्ञायक, जब ऐसा निर्णय करे तो ऐसा लगे, फिर पुनः एकत्वबुद्धि की परिणति में उसे बार-बार विचार करना पड़ता है। प्रयत्न जिसे चलता है उसे इसप्रकार एकत्वबुद्धि हो रही है। इसलिये सहज दशा नहीं है। लेकिन सत्य निर्णय कर सकता है। जिज्ञासा की भूमिका में सच्चा आत्मार्थी हो वह सत्य निर्णय कर सकता है। यदि सत्य निर्णय नहीं कर सके तो उसे एकदम बिना प्रयत्न सहज ज्ञानदशा आती नहीं। वह तो जिसे जिज्ञासा हो, आत्मा का प्रयोजन हो, ऐसा जो प्रयत्न करता है उसे ही ज्ञानदशा सहजरूपसे आती है। इसलिये पहले निर्णय कर सकता है।

सत्पुरुष का निर्णय कर सकता है कि यह ज्ञानी ही है, यही गुरु है, कोई अपूर्व बात बता रहे हैं। इसप्रकार आत्मार्थी है वह नक्की कर सकता है। वैसे ही जो आत्मार्थी है वह आत्मा का निर्णय कर सकता है। आत्मा जो ज्ञायक है, जो स्वरूप स्वयं सुखरूप (है) और सहज जान रहा है वही आत्मा है, जो दुःखरूप वेदन हो रहा है, जो आकूलतारूप वेदन है वह मेरा स्वरूप नहीं है। स्वयं का स्वरूप स्वयं को दुःखरूप हो ही नहीं सकता। लेकिन वह दुःख को पकड़ सके तो। अशुभभाव में दुःख लगे, शुभभाव में उसे सुख लगने लगे। लेकिन दुःख को पकड़े कि दुःख कहाँ है और विभाव क्या है, उसे ग्रहण करे तो वह ज्ञायक को ग्रहण करे यह ज्ञायक सत्य है, यह ज्ञायक है वह मैं हूँ, इसके सिवा अन्य कुछ भी मेरा स्वरूप नहीं है। ज्ञायक को पहचाने तो विभाव को पहचानता है, विभाव को पहचाने तो ज्ञायक को पहचानता है।

मुमुक्षु :- उसके पास प्रगट तो विभाव है, उसे प्रगट विभाव है।

समाधान :- विभाव प्रगट है, ज्ञायक प्रगट नहीं है। ज्ञायक स्वभावसे तो प्रगट है लेकिन वह पहचानता नहीं है। लेकिन वह समझता है कि यह मेरा स्वरूप नहीं है। शांति स्वरूप आत्मा का कोई (भिन्न है)। आत्मार्थी होता है उसे जिज्ञासा होती है, विचार आता है कि यह स्वरूप, ऐसा दुःखमय स्वरूप आत्मा का नहीं हो सकता, आत्मा का स्वरूप कोई भिन्न है। विचारकरके नक्की करे। गुरु के पास सुने कि आत्मा का क्या स्वरूप है? उसे विचार आने का अवकाश होता है।

मुमुक्षु :- मन्द में मन्द कषाय विभाव है वह दुःखरूप है, इतना उसका ज्ञान सूक्ष्म होकर उसे ग्रहण करे तो फिर उसका अन्तर ग्रहण कर सके।

समाधान :- मन्द कषाय में यदि उसे शांति लगे तो वह अन्तर छाँट सकता नहीं। ऊपर-ऊपरसे कहे कि यह ज्ञायक भिन्न है, लेकिन वह यदि मन्द कषाय का अन्तर छाँट नहीं सकता तो सत्य ज्ञायक को पहचान सकता नहीं।

मुमुक्षु :- आत्मार्थीपना तब ही निश्चयसे प्रगट हुआ कह सकते हैं कि जब इतना अन्तर उसके ज्ञान में छाँट सके कि मन्द से मन्द कषाय भी उसे आकूलता रूप वेदन में (आये),

वेदन यानी उसे ख्याल में आये कि यह भी आकूलता ही है।

समाधान :– ज्ञान में ग्रहण होनी चाहिये। आत्मार्थी है उसे ग्रहण हुए बिना रहता ही नहीं। विचारसे नक्की करे, युक्तिसे नक्की करे, गुरुसे नक्की करे फिर स्वयं अन्दर स्वभाव को पहचानकर नक्की करे।

मुमुक्षु :– अनुभवसे पहले स्वभाव को पहचानकर नक्की करने में दिक्कत आती है। अनुभवसे पहले स्वभावसे पहचानकर यह मन्द से मन्द कषाय भी आकूलतारूप है, यह थोड़ा कठिन काम है।

समाधान :– स्वभाव को पहचानकर जिज्ञासा की भूमिका में नक्की कर सकता है कि यह ज्ञानस्वभाव है वही मैं हूँ। इसके सिवा जो कुछ है वह मेरा स्वरूप नहीं है। जिज्ञासा, आत्मा का प्रयोजन हो वह पहचान सकता है–निर्णय कर सकता है। फिर सहज दशारूप नहीं होता। उसकी दशा उस परिणमनरूप दशा नहीं हो जाती, लेकिन निर्णय कर सकता है।

मुमुक्षु :– सच्चे निर्णय के बलसे निःशंकत आ जाती है?

समाधान :– निर्णय करे तो निःशंकता आ जाती है कि यह निर्णय सच्चा ही है, यह यथार्थ है। गुरु जो कहते हो, अपने विचार हों, शास्त्र में जो है, उन सबका मिलान करके खुद नक्की करे कि यह निर्णय सच्चा है।

मुमुक्षु :– अज्ञानदशा में भी ज्ञान के वेदन को यदि पकड़ने का प्रयत्न करे तो उसे आकूलता बिना का एक भाव प्रगट हो रहा है, ऐसा उसे विश्वास आये और उसके आधारसे मन्द में मन्द राग है वह आकूलतारूप है (ऐसा लगे)।

समाधान :– आकूलतारूप है। यह सब आकूलतारूप है। आकूलता बिना का कोई तत्त्व है, इसप्रकार उसे खोजने का वह प्रयत्न करे। खोजने के बाद मन्द कषाय है वह भी आकूलता है, ऐसे वह नक्की कर सके। स्वयं ही है, दूसरा तो कोई है नहीं। अपने ही वेदन में सब आ रहा है। आकूलता इत्यादि सब अपने ही वेदन में आता है, इसलिये नक्की कर सके। और ज्ञानस्वरूप स्वयं है इसलिये नक्की कर सकता है। बहुत कहते हैं, शांति अन्दरसे आती नहीं। कुछ करे फिर भी शांति अन्दरसे आती नहीं। लेकिन अन्दरसे कुछएक खोज नहीं पाते हैं। गुरुदेव के प्रतापसे यह सब समझना सरल हो गया है। गुरुदेवने मार्ग अत्यंत स्पष्ट किया इसलिये। कितने ही लोग ध्यान करते हैं, ये करे, फिर भी कहते हैं, अन्दरसे शांति नहीं मिलती। ध्यान करते हैं फिर भी शांति नहीं लगती। क्योंकि अन्दरसे जो शांति स्वरूप आत्मा है उसे वह ग्रहण करता नहीं और उसे पहचानता नहीं। शांति अंतरमें–से कहाँ–से आये? बाहर पड़ा है, शांति आती नहीं।

गुरुदेवने मार्ग बताया कि तू जाननेवाला है उसमें ही शांति है। तू जाननेवाले को पहचान और उसमें एकाग्र हो, उसे पहचानकर, तो सच्चा ध्यान है। और उसही में सब भरा है। देर लगे उसमें कोई बाधा नहीं है, लेकिन तू श्रद्धा तो बराबर कर कि मार्ग तो यह है।

तो अन्य मार्गपर जानेसे अटक जाता है। चारों ओर बेकार कोशिश करे तो शांति कहाँ-से मिले? जो चैतन्य ज्ञायक है उसमें ही शांति भरी है। बाहर तो है नहीं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने तो स्पष्ट किया है लेकिन आज आप प्रत्यक्ष उस स्पष्टता को अधिक समझाकर हमपर अनन्त-अनन्त उपकार कर रहे हो।

समाधान :- आप सब पूछतो हो इसलिये निकलता है।

मुमुक्षु :- अन्तर के प्रश्न माताजी! अनुभवी पुरुष के सिवा किसे ख्याल आये?

समाधान :- गुरुदेवने बहुत स्पष्ट किया है। कहीं शंका रहे नहीं इस तरह मार्ग को स्पष्ट किया है।

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा-सी.डी.-३ C

समाधान :- जो प्रतिज्ञा ली है उसमें दृढ़ता रखनी चाहिये। लेकिन वह आत्मलक्ष्यपूर्वक होनी चाहिये कि आत्मा कैसे समझ में आये? आत्मा कैसे प्रगट हो? ऐसी भावना अन्दर होनी चाहिये। आत्मार्थे ली हुई प्रतिज्ञा, आत्मा के प्रयोजनपूर्वक ली हुई प्रतिज्ञा, जो प्रतिज्ञा ली हो उसमें दृढ़ता रखनी चाहिये। प्रतिज्ञाभंगसे तो नुकसान ही होता है न। कुछ आदरणीय नहीं है, एक आत्मा ही आदरणीय है। आत्मा ही आदरणीय है, उसे ग्रहण करना चाहिये। बाकी मात्र क्रिया के आग्रहसे (प्रतिज्ञा) ली हो औरा आत्मा का कोई प्रयोजन नहीं हो, मैं इतने उपवास करुँ और ये करुँ, ऐसा हो तो उसमें अपनी भावना कितनी दृढ़ रहती है वह समझना चाहिये। समझपूर्वक की प्रतिज्ञा होनी चाहिये।

आत्मा के सिवा कुछ आदरणीय नहीं है, सब छोड़ने जैसा है। उसमें प्रतिज्ञाभंग हो तो नुकसान होता है। आत्मा का प्रयोजन पहले साधना है, आत्मा कैसे ग्रहण हो? आत्मा ज्ञायकधारा ज्ञायक कैसे प्रगट हो, फिर ज्ञायक को पहचानकर अन्दर दृढ़ निश्चय होना चाहिये। निश्चय होकर अन्दर लीनता बढ़े, उसके साथ शुभभाव आये, उसके साथ प्रतिज्ञा आती है। ऐसी प्रतिज्ञा, सम्यक् रीतसे प्रतिज्ञा तो सम्यग्दर्शन होने के बाद होती है। प्रतिज्ञा सहजरूप होनी चाहिये। हठाग्रहसे ली हुई प्रतिज्ञा (यथार्थ नहीं है)। छोड़ने जैसा तो सबकुछ है, लेकिन खुद को उतनी तैयारी रखनी चाहिये।

दूसरा, खुद की भावना कितनी है वह खुद को समझ लेना। आत्मार्थ का प्रयोजन होना चाहिये, उसका एक अर्थ है। सबकुछ छोड़ने जैसा है। उसमें कुछ रखने जैसा नहीं है। एक आत्मा में ही रहने जैसा है ऐसी प्रतिज्ञा होनी चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये।